

आचार्य यास्क और वेदार्थ

प्रो. मानसिंह

‘संहितोपनिषद्-ब्राह्मण’ के दो मन्त्रों के उद्धरण के माध्यम से आचार्य यास्क ने अपना यह अभिमत व्यक्त किया है कि समग्र भद्र (कल्याण) की समुपलब्धि वेद के अर्थज्ञ व्यक्ति ही को सम्भव है; अर्थ के सम्यक् ज्ञान से रहित वेद का अध्येता वस्तुतः भारहार स्थाणु (रासभ) है; जिस प्रकार इन्धन सूखा होने पर भी अग्नि-सम्पर्क के बिना कभी नहीं जल पाता उसी प्रकार अर्थज्ञान के बिना शब्द से शब्द-मात्र का ग्रहण सकल भद्र का प्रापक नहीं हो पाता।^१ इसी प्रकार उन्होंने ‘ऋग्वेद’ १०/७१/४^२ में, विशेषतः उसके “उतो त्वस्मै तन्वं १ वि संस्त्रे” अंश में अर्थज्ञ की प्रशंसा मानी है^३; और ‘ऋग्वेद’ १०/७१/५^४ के अपने व्याख्यान में कहा है कि यहाँ अर्थ को वाक् का पुष्प एवं फल स्वीकार किया गया है, अथवा यज्ञविषयक तथा देवतासम्बन्धी (ज्ञान) पुष्प-फल होते हैं; अथवा देवता तथा आत्मा से सम्बद्ध ज्ञान पुष्प-फल होते हैं।^५

यास्क के काल (सप्तम अथवा अष्टम शतक ई.पू.) तक वेदविरोधी सन्देहवाद का जन्म हो चुका था, जो वेदों के प्रामाण्य को ही चुनौती नहीं देता था प्रत्युत वेद-मन्त्रों को भी अनर्थक मानता था।^६ ‘निरुक्त’ में कौत्स इस सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिनके मत का खण्डन आचार्य यास्क ने अपनी प्रबल युक्तियों से किया है।^७ उनका अपना ग्रन्थ ‘निरुक्त’ ‘निघण्टु’ नामक वैदिक कोश का

^१ निरुक्त, १.१८; संहितोपनिषद् - ब्राह्मण ३ :
स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् ।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥
यद् गृहीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते ।
अनग्नाविवं शुष्केधो न तज्ज्वलति कर्हिचित् ॥

^२ उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
उत् त्वस्मै तन्वं १ वि संस्त्रे जायेव पत्यं उशती सुवासाः ॥ निरुक्त, १.१९

^३ निरुक्त, १.१९ : ज्ञानं प्रकाशनमर्थस्याह । ... इत्यर्थप्रशंसा ।

^४ उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु ।
अर्धेन्वा चरति माययौष वाचं शुश्रुवाँ अफ्लामपुष्पाम् ॥

^५ निरुक्त १.२० : अर्थं वाचः पुष्पफलमाह । याज्ञदेवते पुष्पफले । देवताध्यात्मे वा ।

^६ तदेव १.१५ : यदि मन्त्रार्थं प्रत्ययायानर्थकं भवतीति कौत्सः । अनर्थका हि मन्त्राः ।

^७ तदेव १.१५-१६

व्याख्यान है^८ और अन्य वेदाङ्गों की भाँति उसकी रचना भी वेदाध्ययन के सौविध्य के निमित्त हुई है।^९ वेदाङ्ग के रूप में ‘निरुक्त’ का सर्वोपरि प्रयोजन मन्त्रों में अर्थ की प्रतीति कराना है।^{१०} अर्थ की प्रतीति के बिना स्वर तथा संस्कार (प्रकृतिप्रत्ययरूप विश्लेषण) का निर्देश सम्भव नहीं है।^{११} इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यास्क के काल तक समय के प्रवाह के कारण भाषा में परिवर्तन आ जाने से वैदिक शब्दों में अनेक शब्द अप्रचलित किं वा दुरुह हो चुके थे और लोगों को उनके अर्थानुसन्धान की आवश्यकता का अनुभव होने लगा था, जिससे उन मन्त्रों का अर्थ समझा जा सके जिनमें कि वे शब्द प्रयुक्त हैं। अत एव दुरुह किं वा महत्त्वपूर्ण शब्दों के कोश रूप निघण्टुओं तथा उनके व्याख्यानरूप निरुक्त-ग्रन्थों का प्रणयन किया गया। दुर्भाग्यवश सम्प्रति हमें एक ही ‘निघण्टु’ और एक ही तद्-व्याख्यान रूप ‘निरुक्त’ (आचार्य यास्क-विरचित) उपलब्ध है; शेष कालकवलित हो गए।

आचार्य यास्क-प्रणीत ‘निरुक्त’ वेदव्याख्या के क्षेत्र में किए गए अथक प्रयासों का एक महनीय सङ्ग्रह-ग्रन्थ है। इसमें ‘निघण्टु’ के १७७१ शब्दों में से ६६० शब्दों की व्याख्या की गई है। ‘निघण्टु’ में सङ्कलित शब्दों के निर्वचन-प्रसङ्ग में आचार्य यास्क ने वे मन्त्र अथवा मन्त्रांश उद्धृत किए हैं, जिनमें उन शब्दों का प्रयोग उनके द्वारा निर्वचन से निर्धारित अर्थ में हुआ है। अपनी बात की पुष्टि अथवा विषय की और अधिक स्पष्टता के लिए वे अनेक मन्त्र अथवा मन्त्रांश भी उद्धृत करते हैं। ‘निरुक्त’ में विभिन्न संहिताओं से लगभग ८०० मन्त्र तथा मन्त्रांश उद्धृत किए गए हैं। ‘निघण्टु’ के व्याख्यान में उपयोगी न होते हुए भी आचार्य यास्क ने अनेक मन्त्रों अथवा मन्त्रांशों का अर्थ सङ्केपतः विशद किया है। इसके फलस्वरूप जहाँ ‘निघण्टु’ के अनेक शब्द अव्याख्यात रह गए हैं वहीं हमें अनेक नवीन शब्दों तथा अनेक मन्त्रों के व्याख्यान भी उपलब्ध हो गए हैं। ‘निरुक्त’ में लगभग ४४० मन्त्रों की खण्डशः अथवा समग्रतः व्याख्या की गई है, जिससे उन मन्त्र विशेषों के अर्थ के प्रकाशन के अतिरिक्त अन्य मन्त्रों को समझने में भी प्रभूत सहायता मिलती है। ‘निघण्टु’ में पाँच अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में १७ खण्डों में पृथ्वी, अन्तरिक्ष, मेघ, रश्मि, नदी आदि भौतिक तथा प्राकृतिक वस्तुओं और उनसे सम्बद्ध क्रियाओं के वाचक ४१५ पर्याय-शब्द सङ्कलित हैं। द्वितीय अध्याय में २२ खण्डों में मनुष्य, उसके अङ्गों, उसके उपयोग की वस्तुओं, उसके कर्म तथा क्रियाओं से सम्बद्ध ५१६ पर्याय-शब्द पठित हैं। तृतीय

^८ तदेव १.१ : समाम्नायः समाम्नातः। स व्याख्यातव्यः। तमिमं समाम्नायं निघण्टव इत्याचक्षते।

^९ तुलनीय तदेव १.२० : साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभुवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान्सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुः। वेदं च वेदाङ्गानि च।

^{१०} तदेव १.१५ : अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थप्रत्ययो न विद्यते। तुलनीय १.२० पर दुर्ग - वृत्तिः वेदाङ्गविज्ञानेन भासते प्रकाशते वेदार्थ इति।

^{११} तदेव १.१५ : अर्थमप्रतीयतो नात्यन्तं स्वरसंस्कारोद्देशः। तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कात्स्न्यम्। स्वार्थसाधकं च।

आचार्य यास्क और वेदार्थ

अध्याय में ३० खण्डों के अभिधायक शब्दों तथा द्यावापृथिवी के पर्याय ४१० शब्दों का सङ्ग्रह है। इन तीन अध्यायों को 'नैघण्टुककाण्ड' के नाम से पुकारा जाता है, जिसमें पठित शब्दों की कुल संख्या १३४१ है। चतुर्थ अध्याय में ३ खण्डों में २७९ अनवगतसंस्कार (व्युत्पत्ति की दृष्टि से कठिन) शब्द परिगणित हैं। पञ्चम अध्याय में ६ खण्डों में १५१ नाम सङ्कलित हैं; प्रथम २ खण्डों में पृथ्वीस्थानीय देवताओं के ५२ नाम, चतुर्थ खण्ड में अन्तरिक्षस्थानीय देवताओं के ३२ नाम, पञ्चम खण्ड में अन्तरिक्ष के अन्य देवताओं तथा विभिन्न स्त्री-देवताओं के ३६ नाम और षष्ठ खण्ड में द्युस्थानीय देवताओं के ३१ नाम पठित हैं। आचार्य यास्क ने 'निघण्टु' के नैघण्टुककाण्ड (अध्याय १-३) की व्याख्या अपने 'निरुक्त' के १-३ अध्यायों (नैघण्टुककाण्ड), चतुर्थ अध्याय (नैगमकाण्ड) की व्याख्या ४-६ अध्यायों (नैगमकाण्ड) और पञ्चम अध्याय (दैवतकाण्ड) की व्याख्या ७-१२ अध्यायों (दैवतकाण्ड) में की है। 'निरुक्त' के १३-१४ अध्याय खिल (परिशिष्ट) रूप माने जाते हैं।^{१२} त्रयोदश अध्याय में दैवतकाण्ड में वर्णित देवताओं की अतिस्तुतियाँ वर्णित हैं और चतुर्दश अध्याय में जीव की मरणोपरान्त गति आदि आध्यात्मिक विषयों पर विचार किया गया है।

वेदार्थ के अवगम, कर्मकाण्ड के सम्पादन आदि के लिए वेदाङ्ग-साहित्य अतीव उपयोगी है। वेदाङ्ग वेदपुरुष के अङ्ग हैं। 'अङ्ग' का तात्पर्य है उपकारक अथवा वेदार्थ का प्रकाशक।^{१३} यद्यपि शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष ये सभी वेदाङ्ग अतीव उपयोगी हैं तथापि वेदार्थ की दृष्टि से व्याकरण तथा निरुक्त की उपयोगिता सर्वातिशायी है। व्याकरण सब शास्त्रों में प्रमुख होने से मुखस्वरूप ही है - "मुखं व्याकरणं स्मृतम्।"^{१४} पदों की मीमांसा करने के कारण वैदिक पदों के बोध हेतु उसका अत्यधिक महत्त्व है; किन्तु निरुक्त का तो प्रमुख उद्देश्य ही वेदार्थानुसन्धान है। आचार्य यास्क स्पष्ट शब्दों में घोषणा करते हैं कि निरुक्त के अध्ययन के बिना मन्त्रार्थ प्रत्यय सम्भव नहीं है।^{१५} वस्तुतः व्याकरण भी निरुक्त पर निर्भर है, क्योंकि शब्द के अर्थ का ज्ञान होने पर ही व्याकरण यह विचार करने में समर्थ हो पाता है कि अमुक शब्द इस अर्थ में कैसे बना। अतः निरुक्त व्याकरण का कात्स्न्य है।^{१६} व्याकरण का स्वरसंस्कारोद्देश भी अर्थ की अप्रतीति की स्थिति में असम्भव है।^{१७} सम्प्रति हमें

^{१२} परिशिष्ट - भाग की प्रामाणिकता तथा कर्तृकत्व हेतु अवलोकनीय शिवनारायण शास्त्री, निरुक्त - मीमांसा (दिल्ली : इण्डोलॉजिकल बुक हाउस, २०२६ वि.) पृ. ४७-५६।

^{१३} द्रष्टव्य दुर्गा - वृत्ति, निरुक्त १.२० : वेदाङ्गविज्ञानेन भासते प्रकाशते वेदार्थ इति।

^{१४} पाणिनीय शिक्षा, ४२

^{१५} निरुक्त १.१५ : अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थप्रत्ययो न विद्यते।

^{१६} तदेव १.१५ : तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कात्स्न्यं स्वार्थसाधकं च।

^{१७} तदेव १.१५ : अर्थमप्रतीयतो नात्यन्तं स्वरसंस्कारोद्देशः।

यास्कविरचित ‘निरुक्त’ ही प्रापत होता है, अन्य नैरुक्तों के केवल उल्लेख-भर ही मिलते हैं। वेदों के सभी भाष्यकार ‘स्कन्दस्वामी’ से लेकर आधुनिक व्याख्या-पद्धति के आविष्कारक रोठ तथा उनके अनुयायी तक - ‘निरुक्त’ से प्रभूत साहाय्य ग्रहण करते आए हैं। निरुक्ताश्रयी वेदभाष्यकारों में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने तो सीमातीत रूप से यास्कीय ‘निरुक्त’ का आश्रय लिया है। आचार्य यास्क ने वैदिक मन्त्रों एवं पदों के अर्थ के प्रसङ्ग में केवल अपने ही नहीं प्रत्युत अपने पूर्वाचार्यों के मतों को भी उद्धृत किया है और इस प्रकार अपने विवेचन में तुलनात्मक दृष्टि एवं पूर्णता का सन्निवेश किया है। अतः ‘निरुक्त’ को यदि वेदार्थ-कोश कहा जाए तो कथमपि अत्युक्ति न होगी। ‘निरुक्त’ की एक विलक्षण विशेषता यह है कि उसमें वेदार्थ-पद्धति से सम्बद्ध अनेक सम्प्रदायों का उल्लेख किया गया है, जिससे सुस्पष्ट है कि आचार्य यास्क के समय तक वेदमन्त्रों का अर्थ अनिश्चित हो चुका था और उनकी व्याख्या विविध दृष्टियों से की जाने लगी थी। आचार्य यास्क द्वारा उल्लिखित वेदार्थ-सम्प्रदाय हैं: याज्ञिक, ऐतिहासिक तथा आख्यान, नैरुक्त, अधिदैवत, परिव्राजक तथा अध्यात्म, वैयाकरण, और विधिपरक। इन वेदार्थ-सम्प्रदायों अथवा पक्षों का संक्षिप्त परिचय कदाचित् अप्रासङ्गिक नहीं होगा।

१. याज्ञिक

वेद-व्याख्या की याज्ञिक पद्धति सुदीर्घ परम्परा से युक्त तथा सर्वाधिक प्राचीन मानी जा सकती है, क्योंकि यह ब्राह्मण-ग्रन्थों, कल्पसूत्रों तथा पद्धतियों में पूर्वतः दृष्टिगोचर होती है। आचार्य शौनक ने इस सम्प्रदाय को अपने ग्रन्थ ‘बृहद्देवता’ में ‘आध्वर्यव’ की सज्ज्ञा प्रदान की है।^{१८} आचार्य यास्क ने ७ स्थलों पर याज्ञिकों का उल्लेख किया है^{१९}, एक स्थल पर ‘इत्यधियज्ञम्’ शब्दों के साथ याज्ञिक व्याख्यान प्रस्तुत किया है^{२०} और अनेक स्थलों पर इस पद्धति के अनुसार व्याख्या की है।^{२१} जैसा कि ‘निरुक्त’^{२२} तथा ‘बृहद्देवता’^{२३} से अनुमान किया जा सकता है, कात्थक्य इस वेदार्थ-सम्प्रदाय के अन्यतम आचार्य थे।

लगभग आदि आचार्यों की दृष्टि में वेदों की अभिप्रवृत्ति यज्ञ के लिए है।^{२४} स्कन्दस्वामी भी अपने ऋग्भाष्य की भूमिका में कहते हैं कि सभी मन्त्र यज्ञ के अङ्गत्व की सिद्धि के लिए हैं, जिसके लिए उनके

^{१८} बृहद्देवता ७.१०५।

^{१९} निरुक्त ५.११; ७.४, २३; ११.२९, ३१, ४२, ४३; अवलोकनीय १३.९ भी।

^{२०} तदेव ११.४।

^{२१} तदेव १.७; ४.५; ५.२६; ६.१, १९, २२; ७.१५, २०, २५; समग्र अष्टम अध्याय; अवलोकनीय १३.६, ७, ८, १३ भी।

^{२२} तदेव ८.५, ६, १०, १७; ९.४१, ४२।

^{२३} बृहद्देवता, ३.१००; द्रष्टव्य विष्णुपाद भट्टाचार्य, Yāska's Nirukta and the science of Etymology (कलकत्ता : फर्मा के. एल. मुखोपाध्याय, १९५८) पृ. ६६-६७

^{२४} वेदाङ्ग - ज्योतिष, ३ : वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः।

आचार्य यास्क और वेदार्थ

अर्थ जानने की आवश्यकता होती है; अतः ऋग्वेद के अर्थबोधनार्थ भाष्य किया जाएगा।^{२५} आचार्य सायण, उवट तथा महीधर के यजुर्वेद-भाष्य; स्कन्दस्वामी, उद्रीथ, वेङ्कटमाधव तथा सायण के ऋग्वेद-भाष्य; माधव, भरतस्वामी तथा गुणविष्णु के सामवेद-भाष्य; और सायण का अथर्ववेद-भाष्य याज्ञिक पद्धति का अनुसरण करने वाले भाष्य हैं। आचार्य यास्क द्वारा इस सम्प्रदाय के अनुसार अनेक मन्त्रों का व्याख्यान इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि वेदार्थ का यह सम्प्रदाय प्राचीन है और उसकी सुदीर्घ परम्परा रही है, यद्यपि जैसा कि आगे स्पष्ट किया जाएगा, वे इसे सर्वोत्तम वेदार्थ-पद्धति नहीं मानते हैं। उपरिसङ्केतित भाष्यों में भी हमें अन्य सम्प्रदायों से सम्बद्ध व्याख्यान मिल जाते हैं।

२. ऐतिहासिक तथा आख्यान

आचार्य यास्क ने ऐतिहासिकों को ३ स्थलों^{२६} पर और आख्यान-सम्प्रदाय का ५ स्थलों पर^{२७} उल्लेख किया है, किन्तु इनके किसी आचार्य विशेष का नामोल्लेख नहीं किया है। ऐतिहासिक अथवा आख्यानविद् मन्त्रों अथवा सूक्तों में इतिहास अथवा आख्यानों की सत्ता के पक्षधर थे और उनकी व्याख्या तद्रूपकूल ही करते थे। आचार्य यास्क ने “तत्रेतिहासमाचक्षते” शब्दों से तथा कहीं-कहीं उनके बिना ही ऐतिहासिक पद्धति का अनुसरण करते हुए कुछ मन्त्रों की व्याख्या प्रस्तुत की है।^{२८} शौनक ने ‘बृहद्देवता’ में कतपय ऋग्वेदीय सूक्तों की ऐतिहासिकता का सङ्केत किया है।^{२९} आचार्य यास्क “इत्याख्यानम्” शब्दों से आख्यानसमय का उल्लेख करते हैं। ‘निरुक्त’ में इस परम्परा का उल्लेख ५ बार हुआ है।^{३०} आख्यानविद् वैदिक सूक्तों तथा मन्त्रों में नामों तथा घटनाओं के विषय में आख्यानों की उद्भावना करते रहे होंगे। यह परम्परा ऐतिहासिक वेदार्थ-परम्परा से पर्याप्त साम्य रखती है। सम्भवतः पौराणिक साहित्य ने इस परम्परा से पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण की है।

यास्क्रीय ‘निरुक्त’ में लगभग उन्नीस वैदिक आख्यानों का उल्लेख हुआ है। इनमें त्रित (४.६), देवापि तथा शन्तनु (२.११), मुद्गल भार्ग्यश्च (३.२३-२४), विश्वकर्मा भौवन (१०.२६), विश्वामित्र-नदी-संवाद (२.२४-२७) और सरण्यू तथा विवस्वान् (१२.९-१०) इन छह आख्यानों का उल्लेख ‘इतिहास’ के रूप में; यम तथा यमी (११.३३-३४), वृक तथा वर्तिका (५.२१) एवं सरमा तथा पणि (११.२४-२५) इन तीन आख्यानों का उल्लेख ‘आख्यान’ के रूप में; और अगस्त्य तथा इन्द्र (१.५), इन्द्र तथा वृत्र

^{२५} सर्वमन्त्राणां कर्माङ्गत्वसिद्धयर्थं यतो बोद्धव्योऽर्थः। अतः ऋग्वेदस्यार्थबोधार्थमस्माभिर्भाष्यं करिष्यते।

^{२६} निरुक्त २.१६; १२.१.१०।

^{२७} तदेव ७.७; ११.१९, २५, ३४; १२.४१।

^{२८} तदेव २.१०-१२, २४-२७; ३.१७; ४.६; ५.२; ११.२५; १२.१०।

^{२९} बृहद्देवता ३.१५६; ४.४६; ६.१०७, १०९; ७.७, १५३।

^{३०} निरुक्त ७.७; ११.१९, २५, ३४; १२.४१।

(२.१६), उर्वशी तथा मैत्रावरुण वसिष्ठ (५.१३-१४), कुरुङ्ग (६.२२), गृत्समद तथा कपिञ्जल (९.४-५), च्यवन। च्यवान (४.१९), जालबद्ध मत्स्य (६.२७), दक्ष तथा अदिति (११.२३), भग का अन्धत्व (१२.१५) एवं श्येन तथा सोम (११.१) इन दश आख्यानो का उल्लेख किसी शब्दविशेष (‘इतिहास’ अथवा ‘आख्यान’) के बिना किया गया है। आचार्य यास्क की दृष्टि से ‘इतिहास’ तथा ‘आख्यान’ में सम्यक् भेद कर पाना सुकर नहीं है।^{३१} यह निश्चित कर पाना कठिन है कि ‘इतिहास’ शब्द ऐतिहासिक घटनाओं का अभिधायक है और ‘आख्यान’ मिथकों अथवा कथानकों का।

ऐतिहासिक तथा आख्यान सम्प्रदायों का ही संवादी एक अन्य सम्प्रदाय है नैदान, जिसका उल्लेख ‘निरुक्त’ में २ स्थलों पर हुआ है।^{३२} आचार्य दुर्ग ने ‘निरुक्त’ (६.९) की वृत्ति में “नैदानाः” की व्याख्या “निदानविदः” के रूप में की है; और अन्यत्र ‘निदान’ शब्द का व्यवहार वैदिक सूक्त। मन्त्र के दर्शन के मूल हेतु के बोधनार्थ किया है, जिससे निदान इतिहास का आधार सिद्ध होता है।^{३३} ऐसा प्रतीत होता है कि सामवेदियों से सम्बद्ध ‘निदान’ नामक कोई ग्रन्थ विशेष था, जिसमें वैदिक मन्त्रों के आविर्भाव (दर्शन) के मूल हेतुओं के सङ्केतक प्राचीन आख्यानो का सङ्ग्रह था।^{३४} यद्यपि नैदान-सम्प्रदाय के अनुसार वेदमन्त्रों के व्याख्यान से सम्बद्ध कोई भी ग्रन्थ हमें अधुना उपलब्ध नहीं है तथापि ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि इस वेदार्थ-पद्धति के अनुगामी वैदिक सूक्तों अथवा मन्त्रों का व्याख्यान उनके आविर्भाव के मूल हेतुओं के अनुसन्धान तथा विवृति में खोजते थे; और इस रूप में उनकी वेदार्थ-पद्धति कुछ रूपों में भिन्न होते हुए भी ऐतिहासिक तथा आख्यान पद्धतियों के समीप थी। प्रो. वी.एस. घाटे की मान्यतानुसार यह वेदार्थ-परम्परा शब्दों तथा विचारों के उद्भव को उन अवसरों से सम्बद्ध करती थी जिन पर ऋषियों के अन्तःकरण में उनका आविर्भाव हुआ और इस प्रकार किसी अंश में इतिहासपरक थी।^{३५}

वैदिक मन्त्रों में वस्तुतः इतिहास की सत्ता है कि नहीं, यह विवाद का विषय है। नैरुक्त-सम्प्रदाय वेदान्तर्गत कल्पित तथाकथित इतिहास एवम् आख्यानजात को अर्थवाद मानता है। आचार्य यास्क की

^{३१} द्रष्टव्य रामगोपाल, The History and Principles of Vedic Interpretation (दिल्ली : कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, १९८३) पृ. ३९ आदि।

^{३२} निरुक्त ६.९; ७.१२।

^{३३} तदेव वृत्ति २.१०; निदानभूत इति हैवमासीदिति य उच्यते स इतिहासः, २.२४; तत्र इमं निदानभूतमितिहासमाचक्षते इत्याचार्याः, १०.२६; य कश्चिद् आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिको वार्थ आख्यायते दिष्ट्युदितार्थावभासनार्थं स इतिहास इत्युच्यते। षड्गुरुशिष्य (सर्वानुक्रमणी-टीका) की उक्ति है - इतिहासो हेतुभूतः।

^{३४} द्रष्टव्य बृहद्देवता ५.३; वसिष्ठ-धर्मसूत्र १.१४; दुर्ग : निरुक्त ७.१ पर वृत्ति। सम्प्रति उपलब्ध ‘नैदानसूत्र’ वैदिक सूक्तों से सम्बद्ध आख्यानो से रहित होने से निश्चय ही भिन्न ग्रन्थ हैं।

^{३५} द्रष्टव्य Ghate's Lectures on Rgveda (सं. वी. एस. सुखथणकर, पुणे, द्वितीय संस्करण, १९२६) पृ. ९०।

आचार्य यास्क और वेदार्थ

स्पष्ट मान्यता है कि दृष्टार्थ ऋषि की आख्यान से संयुक्त करने में प्रीति होती है।^{३६} अपने द्वारा दृष्ट अर्थ के प्रभावक तथा मनोहारी सम्प्रेषण हेतु ऋषि उसे आख्यान से युक्त कर देते हैं। इससे यह सुस्पष्ट है कि दृष्ट अर्थ भिन्न तत्त्व है और उसके संयुक्त आख्यानादि सर्वथा भिन्न। अत एव इतिहास अथवा आख्यान रूपकात्मक तथा अर्थवाद मात्र हैं^{३७}; उन्हें आधुनिक अर्थ में वास्तविक इतिहास नहीं माना जा सकता। इस विषय में वररुचि^{३८}, दुर्गा^{३९} तथा स्कन्दस्वामी^{४०} भी आचार्य यास्क से सहमत हैं। आचार्य यास्क ऐसे इतिहासों अथवा आख्यानों से सम्बद्ध पात्रों की वैकल्पिक व्याख्याएँ प्रदान करते हैं :

१. वृक-वर्तिका : वृक = चन्द्रमा (५.२० : वृकश्चन्द्रमा भवति); सूर्य (५.२१)
(ऋग्वेद, १.११७.१६) वर्तिका = उषा (५.२१)
२. सरण्यू-विवस्वान् : सरण्यू = रात्रि
(ऋग्वेद, १०.७१.१; अथर्ववेद, ३.३१.५, १८.१.५३) विवस्वान् = सूर्य (१२.१२)
३. त्रित : इन्द्र
(ऋग्वेद, १.१८७.१; वाजसनेयि (९.२५ : त्रितस्त्रिस्थान इन्द्रः)^{४१}
संहिता, ३४.७)
४. दक्ष-अदिति : दक्ष = सूर्य
(ऋग्वेद, १०.६४.५) अदिति = अग्नि
(११.२३ : आदित्यो दक्षः, अग्निरप्यदितिरुच्यते)
५. श्येन-सोम : श्येन = इन्द्र

^{३६} निरुक्त १०.१०.४६; ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता।

^{३७} तुलनीय तदेव २.१६ : तत्को वृत्रः ? मेघः इति नैरुक्ताः त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः। अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते। तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति।

^{३८} निरुक्तसमुच्चय (सं. युधिष्ठिर मीमांसक, अजमेर : प्राच्यविद्या - प्रतिष्ठान, द्वितीय संस्करण, सं.२०२२) पृ. ८५-८६ : एवमैतिहासिक पक्षे योजना। नैरुक्तपक्षे तु पुरुरवा मध्यमस्थानः। वायवादीनामेकत्वात् पुरु रौतीति पुरुरवाः उर्वशी विद्युत्। उरु विस्तीर्णमन्तरिक्षं दिव्यत इति उर्वशी; पृ. ८८ एवमैतिहासिकपक्षे योजना। नैरुक्तपक्षे तु यमी मध्यमा वाक्। यमश्च मध्यमस्थानः।

^{३९} द्रष्टव्य निरुक्त १०.२६ पर वृत्ति : एतस्मिन्नर्थे इतिहासमाचक्षते आत्मविद् इतिवृत्तं परकृत्यर्थवादरूपेण यः कश्चिदाध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिको वार्थ आख्यायते दिष्ट्युदितार्थावभासनार्थं स इतिहास इत्युच्यते। स पुनरयमितिहासः सर्वप्रकारो नित्यमविवक्षितस्वार्थस्तदर्थप्रतिपत्तृणामुपदेशपरत्वात्।

^{४०} निरुक्त २.१२ पर टीका : एवमाख्यानस्वरूपाणां मन्त्राणां यजमाने नित्येषु च पदार्थेषु योजना कर्तव्या। एष शास्त्रे सिद्धान्तः। औपचारिको मन्त्रेष्वारख्यानसमयः। परमार्थे नित्यपक्ष इति सिद्धम्।

^{४१} त्रित के विषय में द्रष्टव्य रामगोपाल, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ. ५३-५८।

‘वेदविद्या’ मूल्याङ्कित शोध-पत्रिका

	(ऋग्वेद, ४.२६.७)	(११.२)
६.	यम-यमी	: यम = मध्यमस्थानी अग्नि
	(ऋग्वेद १०.१७.२)	यम - मध्यमा वाक् (१२.१०)
	कतिपय अन्य पात्रों की भी ऐसी ही व्याख्या की गई है :	
१.	सप्तर्षि	: सप्त ज्योतियाँ
	(ऋग्वेद, १०.८२.२; वाजसनेयि- संहिता)	सप्त इन्द्रियाँ (५.२६ : सप्तऋषीणि ज्योतिषि, सप्त ऋषीणानीन्द्रियाणि)
२.	ऋभु	: सूर्यरश्मियाँ
	(ऋग्वेद, १.११०.४)	(१०.१५ : आदित्यरश्मयोऽप्यृभव उच्यन्ते)
३.	भग	: आदित्य
	(ऋग्वेद, ८.११.२)	(१२.१४)
४.	अश्विनौ	: मध्यम (तमोभाग) आदित्य (ज्योतिर्भाग)
		(१२.१ : तमोभागो हि मध्यमो ज्योतिर्भाग आदित्यः)
५.	रुद्र	: अग्नि
		(१०.७ : अग्निरपि रुद्र उच्यते)
६.	वसु	: आदित्यरश्मियाँ
		(१२.४१ : वसव आदित्यरश्मयः) ^{४२}

‘मैत्रायणी-संहिता’ में उर्वशी तथा पुरुरवा की व्याख्या वाक् तथा प्राण^{४३} के रूप में और सरमा की व्याख्या वाक्^{४४} के रूप में की गई है। आचार्य यास्क ने जिन स्थलों पर केवल इतिहास ही दिया है

^{४२} परिशिष्ट - भाग (त्रयोदश तथा चतुर्दश अध्याय) में भी इस प्रकार के कतिपय व्याख्यान प्राप्त होते हैं :

१.	सोम	: आदित्य
	(ऋग्वेद, ९.९६.५)	आत्मा (१४.१२)
२.	देव	: यज्ञ (१३.७)
	(ऋग्वेद, ४.५८.३)	सूर्यरश्मियाँ इन्द्रियाँ (१३.११)
३.	वह्नि	: सूर्य
	(ऋग्वेद ९.९७.३४)	आत्मा (१४.१४)
४.	इन्दु	: सूर्य
	(ऋग्वेद ९.९७.४१)	आत्मा (१४.१७)

आचार्य यास्क और वेदार्थ

स्कन्दस्वामी तथा दुर्ग ने वहाँ नैरुक्त-सम्प्रदाय के अनुसार व्याख्या प्रस्तुत की हैं। इन तथ्यों से यह सुस्पष्ट है कि यास्क आदि नैरुक्त वेदार्थ की ऐतिहासिक पद्धति को प्रामाणिक, अन्तिम तथा सर्वथा स्वीकरणीय नहीं मानते थे। आधुनिक काल में महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा उनके अनुयायी अपौरुषेय वेदों में अनित्य इतिहास का प्रत्याख्यान करते हैं।^{४५}

३. नैरुक्त

आचार्य यास्क ने लगभग २२ स्थलों पर नैरुक्तों के मतों का उल्लेख किया है^{४६}, जिससे यह सिद्ध है कि उनके समय तक नैरुक्त-सम्प्रदाय सुस्थापित हो चुका था और उसका साहित्य पर्याप्त समृद्ध हो चुका था। सम्भवतः आचार्य यास्क से पूर्व १३ नैरुक्त हो चुके थे, जिनके ग्रन्थों तथा व्याख्यानों से वे सुपरिचित थे; चौदहवें नैरुक्त सम्भवतः वे स्वयं हैं।^{४७} यास्क द्वारा उल्लिखित १३ नैरुक्त आचार्य हैं: आग्रायण, औपमन्यव, औरणवाभ, क्रौष्टिकि, गार्ग्य, गालव, चर्मशिराः, तैटीकि, शतबलाक्ष मौद्गल्य, शाकआयन, शाकपूणि, शाकपूणिपुत्र तथा स्थौलाष्ठीवि।^{४८} नैरुक्त-परम्परा के आचार्य वेदमन्त्रों का अर्थ निर्वचनात्मक प्रणाली से करते हैं, क्योंकि निर्वचनों का ऐकान्तिक उद्देश्य अर्थ की व्याख्या है।^{४९} यह परम्परा वैदिक देवों के स्वरूप की व्याख्या उन्हें प्रकृति के विभिन्न रूप मानकर करती थी। यह परम्परा

^{४३} मैत्रायणी-संहिता ३.९.५।

^{४४} सैव ४.६.४। वैदिक आख्यानों के लिए द्रष्टव्य स्वामी विद्यानन्द सरस्वती, "वैदिक आख्यानों का वास्तविक स्वरूप" (प्रह्लाद-स्मारक-व्याख्यानमाला, भाग १, दिल्ली : ईस्टर्न बुक लिंकर्स) पृ. ४९ - ६३।

^{४५} द्रष्टव्य सुधीरकुमार गुप्त, "Ancient schools of Vedic Interpretation" (शोधपत्रिका, श्री गङ्गानाथ झा शोधसंस्थान, इलाहाबाद, खण्ड १५, भाग १) पृ. १४९; "Validity of historical and legendary Interpretation of Vedic stanzas" (भारतीशोधसारसङ्ग्रह, जयपुर, अप्रैल-जुलाई, १९७१, खण्ड २) पृ. ५१-६२; रामनाथ वेदालङ्कार, वेदभाष्यकारों की वेदार्थ प्रक्रियाएँ (होशियारपुर, १९८०), पृ. २९-४७।

^{४६} इन स्थलों में ९ में शब्दविशेषों के निर्वचन (३.८, १४, १९; ४.२४; ६.१, ३, ११; ८.१३; ९.४); १ में परिव्राजकों (२.८), २ में ऐतिहासिकों, ४ में याज्ञिकों (५.११; ७.४; ११.२९, ३१), २ में आख्यानवादियों (११.१९; १२.४१) के मत के प्रतिपक्ष के रूप में नैरुक्तमत का और ४ में अन्य प्रसङ्गों में नैरुक्तमत का (१.१२; ३.१९; ७.५) उल्लेख है। निरुक्त १३.९ में आत्मप्रवाद तथा अन्य मतों के प्रतिपक्ष के रूप में नैरुक्तमत का उल्लेख किया गया है।

^{४७} तुलनीय दुर्गवृत्ति, निरुक्त १.१३ : निरुक्तं चतुर्दशप्रभेदम्; १.२०, निरुक्तं चतुर्दशधा।

^{४८} द्रष्टव्य मानसिंह "निरुक्त में निर्दिष्ट वेदभाष्य-पद्धतियाँ", वेदों का तुलनात्मक और समीक्षात्मक अध्ययन (दिल्ली : नाग पब्लिशर्स, सं. रघुवीर वेदालङ्कार, १९८१) पृ. १४६-१५३।

^{४९} तुलनीय निरुक्त २.१ अर्थनित्यः परीक्षेत। यथार्थं विभक्तीः सन्नमयेत्।

वैदिक आख्यानों की व्याख्या आलङ्कारिक अथवा अर्थवाद रूप में तथा तथाकथित ऐतिहासिक नामों की व्याख्या नित्य सृष्टिरूपों के रूप में करती थी।

आचार्य यास्क द्वारा उल्लिखित नैरुक्त परम्परा के आचार्यों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

(१) आग्रायण

आचार्य यास्क ने निरुक्त १.९, ६.१३ तथा १०.८ में अक्षि, कर्ण, नासत्या तथा इन्द्र पदों के निर्वचन के प्रसङ्ग में ४ बार आग्रायण का मत उद्धृत किया है।

(२) औपमन्यव

आचार्य औपमन्यव का मत यास्क ने निरुक्त १.१, २.२, ६, ११; ३.८, ११, १८, १९; ५.७; ६.३०; १०.८ में १२ बार उद्धृत किया है। पं. भगवद्दत्त की सूचनानुसार गुस्टव ऑपर्ट के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों के सूचीपत्र के भाग २, पृ. ५१० पर दक्षिण के किसी घर में उपमन्युकृत ‘निरुक्त’ का अस्तित्व बताया गया है। औपमन्यव के पिता उपमन्यु रहे होंगे। ‘चरणव्यूह’ आदि ग्रन्थों में चरणों के अवान्तर विभागों में ‘औपमन्यवाः’ का उल्लेख मिलता है।^{५०} ‘वायुपुराण’ में उपमन्यु के कुल का वर्णन है।

(३) और्णवाभ

‘निरुक्त’ में २.२६, ६.१३, ७.१५, १२.१ स्थलों पर उर्वी, नासत्यौ, होता तथा अश्विनौ पदों के निर्वचन तथा विष्णुपद के प्रसङ्ग में ५ बार और्णवाभ का स्मरण है। इनका मत शौनकीय ‘बृहद्देवता’ (७.१२५) में भी उद्धृत है।

(४) क्रौष्टिकि

आचार्य क्रौष्टिकि का मत यास्क ने ‘निरुक्त’ ८.२ में ‘द्रविणोदाः’ पद के निर्वचन के प्रसङ्ग में उद्धृत किया है। इनका मत ‘बृहद्देवता’ (४.१३७) में भी उल्लिखित है। पौराणिक परम्परा के अनुसार क्रौष्टिकि भागुरि ही का अपर नाम है। ‘सप्तशती’ के टीकाकारों ने भी इसका सङ्केत किया है।^{५१} यास्क ने भागुरि का उल्लेख नहीं किया है; और ‘बृहद्देवता’ में क्रौष्टिकि का १ बार (४.१३७) तथा भागुरि का ४ बार (३.१००; ५.४०; ६.८६, १०७) अलग-अलग उल्लेख है। अतः उनकी अभिन्नता सन्देह का विषय है।

(५) गार्ग्य

^{५०} वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग २ (दिल्ली १९७६) पृ. १७०।

^{५१} तुलना कीजिए नागेश, प्रयोगविधि : - “मार्कण्डेयेन क्रौष्टिकि भागुरि प्रति उक्तं स्तोत्रं जैमिनिं प्रतिपक्षिरूपैः मुनिपुत्रैः उक्तं मार्कण्डेय पुराणे।” (विष्णुपाद भट्टाचार्य, Yaska's Nirukta and the science of Etymology, कलकत्ता, १९५८, पृ. ९१)।

आचार्य यास्क और वेदार्थ

आचार्य गार्ग्य का उल्लेख 'निरुक्त' में उपसर्ग, नाम तथा उपमा के प्रसङ्ग में १.२, १२; ३.१३ स्थलों पर ३ बार किया गया है।^{५२} इनका उल्लेख 'बृहद्देवता' में १ बार (१.२६) और 'अष्टाध्यायी' में ३ बार (७.३.९९; ८.३.२०; ८.४.९७) हुआ है। पं. भगवद्दत्त नैरुक्त गार्ग्य को सामपदपाठकार गार्ग्य से अभिन्न मानते हैं।^{५३}

(६) गालव

आचार्य यास्क ने गालव का उल्लेख 'शितामन्' शब्द के निर्वचन के प्रसङ्ग में १ बार किया है। इनका उल्लेख 'बृहद्देवता' में ४ बार (१.२४; ५.३९; ६.४३; ७.३८) हुआ है। ये बाभ्रव्य गोत्रोत्पन्न तथा 'ऋग्वेद' के क्रमपाठकार एवम् एक शिक्षाग्रन्थ के प्रणेता थे।^{५४}

(७) चर्मशिराः

'निरुक्त' में ३.१५ में 'विधवा' पद के निर्वचन के प्रसङ्ग में आचार्य चर्मशिराः का १ बार उल्लेख किया गया है। 'बृहद्देवता' में इनका कोई उल्लेख नहीं है।

(८) तैटीकि

तैटीकि का मत आचार्य यास्क ने 'निरुक्त' ४.३ तथा ५.२७ में २ स्थानों पर 'शितामन्' तथा 'वीरिट' के निर्वचन-प्रसङ्ग में उद्धृत किया है। शौनकीय 'बृहद्देवता' में इनका कोई उल्लेख नहीं है।

(९) शतबलाक्ष मौद्गल्य

आचार्य यास्क ने 'निरुक्त' ११.६ में 'मृत्यु' शब्द के निर्वचन के प्रसङ्ग में १ बार इनका मत उद्धृत किया है। 'बृहद्देवता' में इनका उल्लेख नहीं है।

(१०) शाकटायन

आचार्य शाकटायन ख्यातनामा वैयाकरण रहे हैं। स्वयं यास्क ने वैयाकरण के रूप में भी उनका उल्लेख किया है।^{५५} वे सम्भवतः एक निरुक्तकार भी थे। यास्क ने 'निरुक्त' १.१३ में 'सत्य' शब्द

^{५२} द्रष्टव्य निरुक्त १.१२ पर स्कन्दभाष्यः "न सर्वाणीति गार्ग्यो नैरुक्तविशेषः।"

^{५३} पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, भाग २, पृ. १७१-१७२।

^{५४} द्रष्टव्य महाभारत, शान्तिपर्व, ३४२.१०३-१०४; पाञ्चालेन क्रमः प्राप्तः तस्माद् भूतात् सनातनात्। बाभ्रव्यगोत्रः स बभौ प्रथमः क्रमपारगः। नारायणाद्वरं लब्ध्वा प्राप्य योगमनुत्तमम्। क्रमं प्रणीय शिक्षां च प्रणयित्वा स गालवः ॥

^{५५} निरुक्त १.३.१२। अष्टाध्यायी ३.४.१११; ८.३.१८; ८.४.५०; बृहद्देवता २.९५; ऋक्संप्रतिशाख्य १.१६; १३.३९; वाजसनेयि-प्रातिशाख्य ३.९, १२; ४.१२६, १९१; अथर्वप्रातिशाख्य २.२४ में शाकटायन का उल्लेख मिलता है।

के निर्वचन के प्रसङ्ग में इनका उल्लेख किया है। ‘बृहद्देवता’ में आचार्य शौनक ने अनेक मन्त्रों के अर्थ के प्रसङ्ग में इनके मतों का उल्लेख किया है।^{५६}

(११) शाकपूणि

आचार्य शाकपूणि का मत ‘निरुक्त’ में ‘तडित्’ आदि शब्दों के निर्वचन; ऋग्वेद ९.१०७.९, १०.२८.४, १०.८९.२ एवम् ‘अक्षरम्’ के अर्थ तथा वैश्वदेव ऋचाओं के प्रसङ्ग में २१ बार उद्धृत है।^{५७} ‘निरुक्त’ तथा ‘बृहद्देवता’ से प्रमाणित होता है कि शाकपूणि एक निरुक्त के प्रणेता थे। इसकी पुष्टि वायु, ब्रह्माण्ड तथा विष्णु पुराणों से भी होती है।^{५८} स्कन्दस्वामी के ऋग्भाष्य तथा दुर्ग की निरुक्त-वृत्ति से पता चलता है कि उन्होंने एक निघण्टु की भी रचना की थी^{५९}, जो अधुना अनुपलब्ध है।

(१२) शाकपूणिपुत्र

आचार्य यास्क ने शाकपूणि के पुत्र का केवल १ बार ‘निरुक्त’ १३.११ में उल्लेख किया है। ‘बृहद्देवता’ (५.१४२) में ‘रथीतर’ नाम से उनका स्मरण किया गया है।

(१३) स्थौलाष्टीवि

आचार्य यास्क स्थौलाष्टीवि के मत का उल्लेख ‘निरुक्त’ ७.१४ तथा १०.१ में ‘अग्नि’ तथा ‘वायु’ के निर्वचन के प्रसङ्ग में २ बार करते हैं।

इनके अतिरिक्त आचार्य यास्क ने औदुम्बरायण (१.१), वार्ष्पायणि (१.२) तथा कात्थक्य (८.५, ६, १०, १७; ९.४१, ४२) का भी उल्लेख किया है, जिनका निरुक्तकार होना सुनिश्चित नहीं है। ऐसा अनुमान असहज नहीं है कि इन पूर्ववर्ती नैरुक्तों ने यास्क की भाँति अपने-अपने निघण्टुओं तथा निरुक्त-ग्रन्थों की रचना की थी और इस प्रकार वेदार्थानुसन्धान की परम्परा को समृद्ध किया था। आज हमें यास्कीय ‘निघण्टु’ तथा ‘निरुक्त’ ही उपलब्ध हैं, जो वेदव्याख्याहेतु सर्वथा अपरिहार्य हैं।

४. अधिदैवत

आचार्य यास्क ने इस वेदार्थप्रणाली का लगभग ५ बार उल्लेख किया है^{६०} और इसके अनुसार कुछ मन्त्रों की व्याख्या भी की है। उन्होंने व्याख्या के पूर्व “अथाधिदैवतम्” अथवा बाद में “इत्यधिदैवतम्”

^{५६} बृहद्देवता २.१; ३.१५६; ४.१३८; ६.४३; ७.६९; ८.११.९०।

^{५७} निरुक्त ३.११, १३, १९; ४.३, १५; ५.३, १३, २८; ७.१४, २८; ८.३, ५, ६, १०, १२, १४, १८; १२.१९, ४०; १३.१०।

^{५८} बृहद्देवता ३.१३०, १५५; ५.८, ३९; ६.४६; ७.७०; ८.९०। ‘बृहद्देवता’ में ‘रथीतर’ नाम से भी शाकपूणि का उल्लेख है (१.२६; ३.४०; ७.१४४, १४५)।

^{५९} वायुपुराण ६१.२; विष्णुपुराण ३.४.२३; ब्रह्माण्डपुराण, भाग १, ३५.३ (सं. वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १८९५)।

^{६०} निरुक्त ३.२; १०.२६; ११.४; १२.३७, ३८। अवलोकनीय १३.११; १४.१२-१६, १८, १९, २१, २३-२५, २७ भी।

आचार्य यास्क और वेदार्थ

शब्दों का प्रयोग किया है। वेदार्थ की यह पद्धति वेदमन्त्रों का देवपरक अर्थ करती थी और इस प्रकार नैरुक्त-पद्धति से अभिन्न ही थी।^{६१}

५. परिव्राजक तथा अध्यात्म

आचार्य यास्क ने परिव्राजक-सम्प्रदाय का उल्लेख केवल १ बार 'ऋग्वेद' १.१६४.३२ की व्याख्या के प्रसङ्ग में (निरुक्त २.८) किया है। यहाँ उन्होंने "इति परिव्राजकाः" शब्दों का प्रयोग किया है। यह सम्भवतः संन्यासियों का सम्प्रदाय था, जो वेदमन्त्रों की व्याख्या वैराग्यपरक करता थी।

'निरुक्त' में कुछ स्थलों पर अध्यात्म-सम्प्रदाय का भी उल्लेख हुआ है^{६२}, जो वेदमन्त्रों का अध्यात्मपरक अर्थ करता था। आचार्य यास्क ने कुछ मन्त्रों की व्याख्या इस वेदार्थपद्धति के अनुसार की है। ऐसे स्थलों पर "इति आत्मप्रवादाः" अथवा "अथ अध्यात्मम्" शब्दों का व्यवहार करते हैं।

स्करन्दस्वामी की उक्ति से स्पष्ट है कि परिव्राजक तथा अध्यात्म वेदार्थ-पद्धति स्वरूपतः अभिन्न थीं।^{६३} दोनों ही वेदमन्त्रों की रहस्यात्मक, आध्यात्मिक तथा दार्शनिक व्याख्या करती थीं।

६. वैयाकरण

आचार्य यास्क ने नामों के आख्यातजत्व^{६४} तथा मण्डूक शब्द के निर्वचन^{६५} के प्रसङ्ग में वैयाकरणों के मत का उल्लेख किया है। 'निरुक्त' के परिशिष्ट भाग में 'ऋग्वेद' १.१६४.४५ की व्याकरण शास्त्रपरक व्याख्या उपलब्ध होती है।^{६६} प्राचीन ग्रन्थों में कुछ वैदिक मन्त्रों की व्याकरणशास्त्रीय व्याख्या मिलती है। पतञ्जलि विरचित 'महाभाष्य के पस्पशाहिक-भाग में 'ऋग्वेद' १.१६४.४५; ५.५८.३; ८.६९.१२ और १०.७१.२ तथा ४ की व्याकरणपरक व्याख्या है। इसी प्रकार आचार्य सारण ने 'ऋग्वेद' १.१६४.४१ तथा ४.५८.३ की व्याकरणसम्बन्धी व्याख्या की है।

७. विधि

^{६१} तुलनीय 'अस्य वामस्य' सूक्त पर आत्मानन्द-भाष्य (सं. प्रेमनिधि, लाहौर, १९३२), पृ. ६० निरुक्तमधिदैवतविषयम्।

^{६२} निरुक्त ३.१२; १०.२६; १२.३७, ३८। अवलोकनीय १३.११; १४.१२-१६, १८, १९, २१, २३, २५, २७।

^{६३} निरुक्त २.८ पर भाष्य : एष परिव्राजकानामात्मविदां दर्शने चास्या ऋचोऽर्थः।

^{६४} निरुक्त १.१३ : तत्र नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च। न सर्वाणीति गार्ग्यो वैयाकरणानां चैके।

^{६५} तदेव ९.५ : मण्डयतेरिति वैयाकरणाः।

^{६६} तदेव १३.९ : 'चत्वारि वाक्परिमिता पदानि' की व्याख्या 'नामाख्याते चोपसर्गनिपाश्चेति वैयाकरणाः' की गई है।

आचार्य यास्क ने वसिष्ठ तथा अन्य आचार्यों के मतों का सङ्केत करते हुए दाय्याद्य प्रसङ्ग में ‘ऋग्वेद’ ७.४.७; ७.४.८; ३.३१.१; १.१२४.७ तथा ३.३१.२ की व्याख्या प्रस्तुत की है,^{६७} जिससे स्पष्ट है कि कतिपय मन्त्रों की दाय्याद्य-प्रसङ्ग में विधिपरक व्याख्या की जाती थी। निश्चय ही ऐसा कतिपय मन्त्रों ही के प्रसङ्ग में सम्भव रहा होगा।

उपरिगत पंक्तियों से सुस्पष्ट है कि आचार्य यास्क ने पूर्व ही वेदमन्त्रों के अर्थ विविध दृष्टियों से किए जाने लगे थे और इस विषय में विविध सम्प्रदायों का उदय हो चुका था। यास्क ने अनेक मन्त्रों का अर्थ यज्ञपरक किया है^{६८}, जिससे वेदार्थ पर याज्ञिक प्रभाव प्रमाणित होता है। उन्होंने एक मन्त्र की अधियज्ञ तथा अधिदैवत पद्धतियों के अनुसार^{६९} और दो मन्त्रों की अधिदैवत तथा अध्यात्म सम्प्रदायों के अनुसार^{७०} व्याख्या की है तथा व्याख्यान में इन पद्धतियों का स्पष्ट उल्लेख किया है। इस प्रकार अधियज्ञ, अधिदैवत तथा अध्यात्म-ये तीन ही वेदार्थपद्धतियाँ प्रमुख प्रतीत होती हैं। आचार्य यास्क की उक्ति से भी ऐसा ही स्पष्ट होता है।^{७१} इनमें भी यास्क अध्यात्मवेदार्थपद्धति के पक्षधर प्रतीत होते हैं। इस प्रसङ्ग में यास्काभिमत देवता की अवधारणा का अनुसन्धान आवश्यक होगा। यद्यपि उन्होंने इस नैरुक्त मत का उल्लेख किया है जिसके अनुसार देवता तीन हैं - पृथिवीस्थान अग्नि, अन्तरिक्षस्थान वायु अथवा इन्द्र तथा द्युस्थान सूर्य; महाभाग्यशालित्व अथवा कर्मपृथक्त्व के कारण इनमें एक-एक के अनेक नाम होते हैं^{७२} तथापि उनका अपना निजी मत इससे भिन्न है; उनके मत में आत्मा ही एकमात्र देवता है; देवता के महाभाग्यशालित्व के कारण एक आत्मा की बहुधा स्तुति की जाती है; एक आत्मा के अन्य देव प्रत्यङ्ग बन जाते हैं; अथवा पदार्थों की प्रकृति (आत्मा) के भूमा होने तथा सार्वनाम्य (सर्वगामित्व, सर्वव्याप्तत्व) के कारण ऋषि एक ही आत्मा की बहुधा स्तुति करते हैं। ये देव इतरेतरजन्मा तथा इतरेतरप्रकृति होते हैं; ये कर्मानुसार जन्म लेने वाले तथा (आत्मा की अभिव्यक्ति होने के कारण) आत्मा से जन्म लेने वाले होते हैं; इनके रथ, अश्व, आयुध, इषु आदि उपयोजन भी आत्मा ही हैं; देवता का सभी कुछ आत्मा ही

^{६७} तदेव ३.१-६।

^{६८} तदेव १.७, ८; ३.८; ४.५; ५.२२; ६.१, १९, २२; ७.१५, १९, २५; ८। अवलोकनीय १३.६, ९, १३ भी।

^{६९} तदेव ११.४ (ऋग्वेद ९.१.१; सामवेद १.४०८; २.३९; वाजसनेयि-संहिता २६.२५)।

^{७०} तदेव १०.२६ (ऋग्वेद १०.८२.२; वाजसनेयि संहिता १७.२६); १२.३७ (वाजसनेयिसंहिता ३४.५५)। निरुक्त के परिशिष्ट भाग (अध्याय १३-१४) में लगभग ९३ मन्त्रों की व्याख्या अधिदैवत तथा अध्यात्म सम्प्रदायों के अनुसार (१३.११; १४.१२-१९, २१-२५, ३७); ४ मन्त्रों की व्याख्या अध्यात्म पद्धति के अनुसार (१४.२०, २९-३०, ३२); और ५ मन्त्रों की व्याख्या अधिदैवत मत के अनुसार (१४.२६, २८, ३१, ३३, ३५) की गई है।

^{७१} तदेव १.२० : अर्थ वाचः पुष्पफलमाह। याज्ञदेवते पुष्पफले। देवताध्यात्मे वा।

^{७२} तदेव ७.५ : तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवीस्थानः। वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः। सूर्यो द्युस्थानः। तासां महाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति। अपि वा कर्मपृथक्त्वात्। ७.८ तिस्र एव देवता इत्युक्तं पुरस्तात्।

आचार्य यास्क और वेदार्थ

होता है।^{३३} अतः देवता आत्मातिरिक्त कुछ भी नहीं है। आचार्य यास्क के 'आत्मा' शब्द के निर्वचन से उनका आत्मा के स्वरूप का अवगमन सुस्पष्ट है।^{३४} उन्होंने "अग्निः सर्वा देवताः"^{३५} (अग्नि सब देवता हैं) इस ब्राह्मण-वाक्य तथा 'ऋग्वेद' १.१६४.४६^{३६} की व्याख्या के माध्यम से कहा है कि महान् आत्मा - एक आत्मा इस अग्नि की स्तुति मेधावी इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि तथा दिव्य गुरुत्मान के रूप में बहुधा करते हैं।^{३७} अत एव उनकी दृष्टि में आत्मा ही एकमात्र देवता है। यद्यपि उन्होंने अपने पूर्ववर्ती नैरुक्तों की विविधदेववादी अधिदैवत मत के अनुसार कुछ मन्त्रों की व्याख्या की है तथापि उनकी दृष्टि में वेद का तात्पर्य अध्यात्म में ही निहित है। 'ऋग्वेद' के 'महद्देवानामसुरत्वमेकम्' (देवों का महान् असुरत्व - प्राणवत्त्व एक ही है ३.५५.१९)^{३८}; "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" (मेधावी एक सत्त्व का बहुधा वर्णन करते हैं; १.१६४.४६)^{३९} आदि वचनों से आचार्य यास्क की दृष्टि की प्रामाणिकता सिद्ध होती है।^{४०}

पदपाठ वेदार्थ के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है तथा कोई भी वेदार्थानुसन्धाता उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। अत एव आचार्य यास्क ने शाकल्यकृत ऋग्वेद-पदपाठ का समीक्षात्मक अध्ययन किया है और अनेकत्र अपना वैमत्य अभिव्यक्त किया है :

(१) आचार्य यास्क ने "वने न वायो न्यधायि चाकन" (ऋग्वेद १०.२९.१) में प्रयुक्त 'वायो' पाद को 'वा' तथा 'यः' के रूप में भग्न कर किए गए आचार्य शाकल्य के पदपाठ से विमति व्यक्त की है। यास्क के अनुसार 'वायो' एक पद है, जो पक्षिवाचक 'वि' का रूप है;^{४१} शाकल्य द्वारा इसका विश्लेषण दो कारणों से अनुचित है: (१) यदि 'यः' यत् सर्वनाम का प्रथमा विभक्ति का

^{३३} तदेव ७.४ महाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते। एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति। अपि च सत्त्वानां प्रकृतिभूमिर्ऋषयः स्तुवन्तीत्याहुः। प्रकृतिसार्वनाम्याच्च। इतरेतरजन्मानो भवन्ति। इतरेतरप्रकृतयः। कर्मजन्मानः। आत्मजन्मानः। आत्मैवैषां रथो भवति। आत्माश्वः। आत्मायुधम्। आत्मेषवः। आत्मा सर्व देवस्य देवस्य।

^{३४} तदेव ३.१५; आत्माततेर्वा। आप्तेर्वा। अपि वाप्त इव स्यात्। यावद् व्याप्तिभूत इति।

^{३५} निरुक्त ७.१७; ऐतरेय-ब्राह्मण २.३; तैत्तिरीय-ब्राह्मण १.४.४.१०।

^{३६} इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गुरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ निरुक्त ७.१८।

^{३७} निरुक्त ७.१८ इममेवाग्निं महान्तमात्मानमेकमात्मानं बहुधा मेधविनो वदन्तीन्द्रं मित्रं वरुणमग्निं दिव्यं च गुरुत्मन्तं दिव्यो दिविज गुरुत्मान् गरणवान् गुर्वात्मा महात्मेति वा।

^{३८} तदेव १०.३४।

^{३९} तदेव ७.१८।

^{४०} तुलनीय श्रीमद्भगवद्गीता १०.३२ अध्यात्मविद्या विद्यानाम; १५.१५ वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदेव चाहम्।

^{४१} निरुक्त ६.२८ वन इव वायो वैः पुत्रश्चायन्निति वा कामयमान इति वा।

एकवचनान्त रूप होता तो उसके बाद आने वाला ‘अधायि’ आख्यात पद आद्युदात्त होता,^{६२} जबकि वह सर्वानुदात्त है; (२) यदि ‘वा’ तथा ‘यः’ को दो पृथक् पद स्वीकार किया जाए तो वाक्य अर्थ असुसमाप्त रह जाएगा।^{६३}

(२) इसी प्रकार यास्क आचार्य शाकल्य द्वारा “अरुणो मासकृद् वृकः पथा यन्तं ददर्श हि” (ऋग्वेद १.१०५.१८) में प्रयुक्त ‘मासकृद्’ पद का ‘मा’ तथा ‘सकृत्’ इन दो पदों के रूप में विश्लेषण का खण्डन करते हैं। यास्क ‘मासकृत’ को एक समस्त पद मानते हैं, जो परवर्ती चन्द्रवाची ‘वृकः’ पद का विशेषण है।^{६४}

(३) शाकल्य आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् (ऋग्वेद ५.४६.८) में प्रयुक्त रोदसी को द्यावापृथिवी का बोधक द्विवचनान्त प्रगृह्य पद मानते हैं, जबकि आचार्य यास्क इसे ‘रुद्र की पत्नी’ के अर्थ में स्वीकार करते हैं।^{६५}

अपने निरुक्त-भाष्य में स्कन्दस्वामी ने आचार्य यास्क तथा शाकल्य के वैमत्य अथवा मतैक्य के कतिपय अन्य स्थलों का भी सङ्केत किया है।^{६६}

वेद के सभी मन्त्र स्वराङ्कित हैं। मन्त्रार्थ-निर्णय में स्वरज्ञान का अत्यधिक महत्त्व है। भर्तृहरि ने शब्दार्थसन्देह प्रसङ्ग में स्वर को अर्थविशेष की स्मृति का हेतु माना है।^{६७} पाणिनीय शिक्षा के अनुसार

^{६२} पाणिनि, अष्टाध्यायी ८.१.६६ यद्वृत्तान्नित्यम्।

^{६३} निरुक्त ६.२८ वेति च चर्त्ता शाकल्य उदात्तं त्वेवमाख्यातमभविष्यदसुसमाप्तश्चार्थः। आचार्य शौनक (बृहद्देवता २.११४) ने यास्क का खण्डन कर शाकल्य का पक्ष लिया है। उद्गीथ ने इस मन्त्र की शाकल्य तथा यास्क दोनों भी दृष्टि से दो व्याख्याएँ की हैं। वेंकटमाधव ने यास्क का अनुसरण किया है, जबकि सायण इस मन्त्र की दुर्गकृत व्याख्या को स्वीकार करते हैं। आधुनिक विद्वानों में ग्रासमान, गेल्डनर तथा विश्वबन्धु शाकल्य को प्रमाण मानते हैं, जबकि विल्सन, ग्रिफ़िथ आदि सायण का अनुसरण करते हैं।

^{६४} निरुक्त ५.२१ मासकृन्मासानां चार्द्धमासानां च कर्त्ता भवति चन्द्रमा वृकः। आचार्य शौनक (बृहद्देवता २.११२) ने शाकल्य का पक्ष लिया है। स्कन्दस्वामी तथा वेंकटमाधव ने शाकल्य के विश्लेषण को स्वीकार किया है, जबकि सायण एक अर्थ शाकल्य के विश्लेषण कि दृष्टि से और दूसरा अर्थ यास्क के अनुसार देते हैं। ग्रासमान, गेल्डनर, विश्वबन्धु आदि अधिकांश विद्वान् शाकल्य का विश्लेषण स्वीकार करते हैं। द्रष्टव्य रामगोपाल, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ. ६७।

^{६५} निरुक्त १२.४६; रोदसी रुद्रस्य पत्नी। दुर्ग के अनुसार यास्क यहाँ अथर्ववेद (८.४९.२) का अनुसरण करते हैं, जहाँ अप्रगृह्य रोदसी पद प्रयुक्त हुआ है : आथर्वणे रोदसीत्यप्रगृह्यं पद्म। तदपेक्ष्य एकवचनेन भाष्यकारो निराह - रुद्रस्य पत्नीति। स्कन्दस्वामी यास्क का खण्डन करते हैं, क्योंकि आद्युदात्त रोदसी पद का अर्थ, जैसा कि शाकल्यकृत पदपाठ सम्मत है, केवल द्यावापृथिवी ही हो सकता है।

^{६६} अवलोकनीय विष्णुपाद भट्टाचार्य, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ ९-२८।

^{६७} वाक्यपदीय २.३१७-३१८

संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।

अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः ॥

आचार्य यास्क और वेदार्थ

स्वर से हीन मन्त्र अभीष्ट अर्थ का बोध नहीं करा सकता।^{८८} वेंकटमाधव का कहना है कि जिस प्रकार अन्धकार में दीपिका की सहायता से चलता हुआ मनुष्य मार्ग में स्वलित नहीं होता उसी प्रकार स्वरों की सहायता से किए गए अर्थ भी स्फुट अर्थात् सन्देहरहित होते हैं।^{८९} उनके मत में स्वर के द्वारा ही अर्थ की व्यवस्था होती है, व्याकरणानुसार स्वरव्यवस्था नहीं।^{९०} उन्होंने अपनी स्वरानुक्रमणी की रचना का प्रयोजन मन्त्रों में स्वर से अर्थ का निर्णय माना है।^{९१} इस प्रकार उन्होंने वेदार्थ में स्वर की परम उपयोगिता सिद्ध की है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने भी व्याकरण के असन्देह रूप प्रयोजन के प्रसङ्ग में स्वर को अर्थ का नियामक माना है।^{९२} शबरस्वामी की दृष्टि में मन्त्रों में त्रैस्वर्य का समाम्नान मन्त्रों के अर्थ के बोधनार्थ है।^{९३} वेङ्कटमाधव ने यह स्पष्ट कहा है कि जहाँ भी एक शब्द का अर्थ समान होगा वहाँ सर्वत्र उसका स्वर भी समान ही होगा; जहाँ स्वर में भेद होगा वहाँ अर्थ भी भिन्न होगा।^{९४} श्रीमद्भयानन्द

सामर्थ्यमौचित्यी देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः ॥

^{८८} कारिका ५२

मन्त्रोहीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥

^{८९} स्वरानुक्रमणी ८.१२

अन्धकारे दीपिकाभिर्गच्छन्न स्वलति क्वचित्।
एवं स्वरैः प्रणीतानां भवन्त्यर्थाः स्फुटा इति ॥

^{९०} तैव १.२५-२६

मन्यन्ते पण्डितास्त्वन्ये यथाव्याकरणं स्वरम्।
व्यवस्थितो व्यवस्थायां हेतुः क्वचिन्न विद्यते ॥
माधवस्य त्वयं पक्षः स्वरेणैव व्यवस्थितिः।

^{९१} सैव, उपोद्घात

अनुक्रमणिका षष्ठी स्वरतोऽर्थस्य निर्णयः।
प्रदर्शयति मन्त्रेषु ग्राह्या सा निपुणैर्नृभिः ॥

^{९२} महाभाष्य पस्पशाह्निकः याज्ञिका पठन्ति - स्थूलपृषतीमाग्निवारुणमनङ्गाहीमालभेतेति। तस्यां सन्देहः - स्थूला चासौ पृषती च स्थूलपृषती, स्थूलानि पृषन्ति यस्याः सेयं स्थूलपृषती। तां नावैयाकरणः स्वरतोऽध्यवस्यति। यदि पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं ततो बहुव्रीहिः, अथ समासान्तोदात्तत्वं तत्स्तत्पुरुष इति।

^{९३} मीमांसासूत्र ९.२.३१ पर भाष्य : अथ त्रैस्वर्यादीनां कथं समाम्नानमिति? उच्यते, अर्थावबोधनार्थं भविष्यति।

^{९४} स्वरानुक्रमणी ८.२

अर्थाभेदे तु शब्दस्य सर्वत्र सदृशः स्वरः।
यदा न तं स्वरं पश्येदन्यथार्थं तदा नयेत् ॥

सरस्वती ने भी स्वरों को वेदार्थ में उपयोगी माना है।^{९५} लौकिक आचार्यों में स्वर तथा रसरूप अर्थ में सम्बन्ध स्वीकार करते हुए भरत ने विधान कि है कि हास्य तथा शृङ्गार रसों के पाठ्य का उपपादन स्वरित तथा उदात्त वर्णों के द्वारा; वीर, रौद्र तथा अद्भुत से सम्बद्ध पाठ्य का उदात्त तथा कम्पित स्वरों के द्वारा; और करुण, बीभत्स तथा भयानक रसों से सम्बद्ध पाठ्य का अनुदात्त, स्वरित तथा कम्पित स्वरों के द्वारा करना चाहिए।^{९६} मम्मट, विश्वनाथ आदि आचार्य भी वेद में स्वर को विशेषप्रतीतिकृत मानते हैं।^{९७}

आचार्य यास्क भी वेदार्थ में स्वर की उपयोगिता से सुपरिचित हैं। उन्होंने ‘स्वर’^{९८} शब्द के उपयोग के साथ-साथ ‘उदात्त’^{९९} तथा ‘अनुदात्त’^{१००} स्वरभेदों का भी शब्दतः उल्लेख किया है। उनके मत में अर्थ-ज्ञान से रहित व्यक्ति स्वर तथा संस्कार (व्याकरणसम्मत प्रकृति-प्रत्यय-विभाग) के निर्धारण में समर्थ नहीं हो सकता।^{१०१} उन्होंने स्वरव्यवस्था के विषय में स्पष्टतः कहा है कि तीव्र अर्थात् प्रधान अर्थ उदात्त होता है और अल्प अर्थात् गौण अर्थ अनुदात्त।^{१०२} इसके लिए उन्होंने ‘अस्याः’ तथा ‘अस्य’ पदों को ग्रहण किया है। अस्याः के स्वरप्रतिपादनार्थ वे “अस्या ऊ षु ण उप सातवे भुवोऽहेळमानो पूरिवाँ अजाश्व श्रवस्यतामजाश्च” (ऋग्वेद १.१३८.४) तथा दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवति शरदः शतम् (ऋग्वेद १०.८५.३९) को उद्धृत करते हैं। प्रथम उद्धरण में ‘अस्याः’ पद प्रथमादेश में होने से उदात्त और द्वितीय उद्धरण में अन्वादेश में होने से अनुदात्त है।^{१०३} इसी प्रकार ‘अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्वः। तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विशपतिं सप्तपुत्रम्॥

^{९५} ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, स्वरप्रकरण : वेदार्थोपयोगिताया संक्षेपतः स्वराणां व्यवस्था लिख्यते। तथापि, उनके कुछ अनुयायी इस सिद्धान्त का विरोध करते हैं; द्रष्टव्य सुधीरकुमार गुप्त, वैदिक स्वर और वेदार्थ, वेदोद्धारिणी, दिल्ली, वर्ष ५, खण्ड २०, एप्रिल-जून, १९८८, पृ. २३-४८।

^{९६} नाट्यशास्त्र १७.११० तत्र हास्यशृङ्गारयोः स्वरितोदात्तवर्णैः पाठ्यमुपपाद्यम् वीररौद्राद्भुतेषूदात्तकम्पितैः, करुणबीभत्सभयानकेष्वनुदात्तस्वरितकम्पितैः।

^{९७} मम्मट, काव्यप्रकाश, २ : इन्द्रशत्रुरित्यादौ वेद एव, न काव्ये स्वरो विशेषप्रतीतिकृत ; विश्वनाथ, साहित्यदर्पण ३; स्वरस्तु वेद एव विशेषप्रतीतिकृत।

^{९८} निरुक्त १.१२ : तद्यत्र स्वरसंस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन गुणेनान्वितौ स्यातां संविज्ञातानि तानि १.१५; अर्थमप्रतीयतो नात्यन्तं स्वरसंस्कारोद्देशः २.१; तद्येषु पदेषु स्वरसंस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन गुणेनान्वितौ स्यातां तथा तानि निर्ब्रूयात्।

^{९९} तदेव ६.२९।

^{१००} तदेव १.७, ८; ५.५, २३ (दो बार)।

^{१०१} तदेव १.१५ अर्थमप्रतीयतो नात्यन्तं स्वरसंस्कारोद्देशः।

^{१०२} तदेव ४.२५ तीव्रार्थतरमुदात्तमल्पीयोऽर्थतरमनुदात्तम्।

^{१०३} तदेव ४.२५ अस्या इति चास्येति चोदात्तं प्रथमादेशे। अनुदात्तमन्वादेशे। तुलनीय वेङ्कटमाधव, स्वरानुक्रमणी ७.२।

आचार्य यास्क और वेदार्थ

(ऋग्वेदे १.१६४.१) में प्रयुक्त प्रथम 'अस्य' पद प्रथमादेश में होने से उदात्त तथा द्वितीय अस्य पद अन्वादेश में प्रयुक्त होने से अनुदात्त है।^{१०४} प्रथमादेश में अर्थ प्रधान तथा अन्वादेश में गौण होता है। शब्दों की अर्थानुसार उदात्तानुदात्तता वेङ्कटमाधव को भी मान्य है।^{१०५} उनकी सम्मति है कि प्रकृति (धातु) अथवा प्रत्यय में से जिसमें भी उदात्त स्वर स्थित हो उसी के अर्थ में शब्द का तात्पर्य स्थापित करना चाहिए।^{१०६} उदाहरणार्थ असमस्त आद्युदात्त 'विश्व' शब्द में। विश् का अर्थ अभिव्यक्त होता है, यथा - विश्वे देवासो अस्मिधः (ऋग्वेदे १.३.९); किन्तु समासस्थ 'विश्व' शब्द में गौणरूप विश् के अर्थ को लिए हुए प्रत्यायर्थ अभिव्यक्त होता है, यथा - विश्वामित्रस्य रक्षति (ऋग्वेदे ३.५३.१२)।^{१०७} महाकवि माघ ने भी उपमा द्वारा उदात्त स्वर के अर्थ की प्रधानता का वर्णन किया है; उनके अनुसार अनुदात्तादि अन्य स्वर उदात्त स्वर की परिवारिता को प्राप्त होते हैं।^{१०८}

आचार्य यास्क ने निरुक्त में अनेक वैदिक शब्दों के स्वरूप एवम् अर्थ का निर्णय उनके स्वरों के आधार पर किया है।^{१०९}

वेदों में अनेकत्र आलङ्कारिक वर्णन पाए जाते हैं। ऐसे स्थलों पर शब्दों का मुख्यार्थमात्र ग्रहण न कर गौणी वृत्ति का आश्रय लेकर अन्य अर्थ ग्रहण कर निहित तात्पर्य की विवृति करनी चाहिए।^{११०} आचार्य यास्क इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए जार आ भर्गम् (ऋग्वेदे १०.११.६; अथर्ववेदे १८.१.२३) में प्रयुक्त 'जारः' पद का अर्थ सूर्य करते हैं, क्योंकि वह रात्रि एवं ज्योतियों को जीर्ण करने वाला है।^{१११}

^{१०४} तदेव ४.२६।

^{१०५} स्वरानुक्रमणी ६.७ अर्थस्वभावात्सर्वेषां शब्दानामुच्चनीचता।

^{१०६} सैव ४.११

प्रकृतौ प्रत्यये वाऽपि स्वरो यत्र व्यवस्थितः।
तात्पर्यं तत्र शब्दस्य स्थापयेदिति निर्णयः ॥

^{१०७} सैव ४.३, ४।

^{१०८} शिशुपालवध २.९०

अनल्पत्वात्प्रधानत्वांशस्येवेतरे स्वराः।
विजिगीषोर्नुपतयः प्रयान्ति परिवारिताम् ॥

द्रष्टव्य इस पर बल्लभदेव की टीका क इव इतरे स्वरा इव। यथाऽन्ये स्वरा अनुदात्तादयः अंशस्य अंशाभिधानस्वरस्य उदात्तस्वरस्य बहुलध्वने परिवारितां गच्छन्ति। सोऽपि सकृदुच्चारणादल्पो भवति। उक्तं च - 'योऽत्यन्तबहुलो यत्र वादी चांशस्य तत्र सः' इति। अत एव प्रधानत्वम्।

^{१०९} विस्तरहेतु द्रष्टव्य मानसिंह, Yaska on Vedic Accent, aligarhi Journal of Oriental Studies, खण्ड २, भाग १-२, १९८५, पृ. ५३-५६।

^{११०} तुलनीय जयन्तभट्ट, न्यायमञ्जरी : न हि मुख्ययैव वृत्त्या लोके शब्दाः प्रवर्तन्ते, गौण्यापि वृत्त्या व्यवहारदर्शनात्। एवं वेदऽपि तेषां प्रयोगो भविष्यति।

^{१११} निरुक्त ३.१६ आदित्योऽत्र जार उच्यते। रात्रेर्जरयिता। स एव भासाम्।

स्वसुर्जारः शृणोतु नः (ऋग्वेद ६.५५.५) में आगत ‘स्वसुः’ में ‘स्वसा’ का अर्थ उषा करते हैं, क्योंकि आदित्य से उसका साहचर्य होता है अथवा रसहरण (उषा के रस अर्थात् प्रभा का हरण) करने के कारण आदित्य को उसका जार कहा गया है;^{११२} इसी प्रकार पिता दुहितुर्गर्भमाघात् (ऋग्वेद १.१६४.३) में पिता तथा दुहिता का अर्थ क्रमशः पर्जन्य तथा पृथिवी करते हैं।^{११३} ऐसे स्थलों पर वेदार्थानुसन्धाता को अतीव सचेत रहना पड़ेगा।

कुछ लोग वेदों के शैलीगत अध्ययन के आधार पर मधुमन्तं..... मधुश्रुतम्” (ऋग्वेद ४.३७.२) हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृक् (ऋग्वेद २.३५.२) आदि स्थलों में एक ही पाद में अभ्यास होने से अनावश्यक आवृत्ति की स्थिति मानते हैं, जबकि अन्य किंचित् परिवर्तनपूर्वक अभ्यास को ऐसा स्वीकार नहीं करते यथा मण्डूका इवोदकान्मण्डूका उदुकादिव (ऋग्वेद १०.१६६.५)।^{११४} आचार्य यास्क के मतानुसार इस प्रकार के अभ्यास (जामि) को दोष नहीं माना जा सकता; उससे तो वस्तुतः और अधिक (विशिष्ट) अर्थ की प्रतीति होती है; यथा अहो दर्शनीया अहो दर्शनीया (वह दर्शनीय है, वह सचमुच ही बहुत दर्शनीय है)। आचार्य यास्क सूचित करते हैं कि ऐसा अभ्यास ऋषि परुच्छेप का स्वभाव है।^{११५}

ब्राह्मण वेद के व्याख्यानरूप ग्रन्थ होने से^{११६} वेदार्थ के लिए नितान्त उपयोगी हैं। स्वयं यास्क वैदिक शब्दों तथा मन्त्रों की व्याख्या के लिए उनका प्रभूत आश्रय लेते हैं और पदे-पदे उन्हें उद्धृत करते हैं;^{११७} तथापि, उनके मत में ब्राह्मण ग्रन्थों का एतदर्थ उपयोग सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए, क्योंकि वे शब्दों के विविध अर्थ बतलाते हैं।^{११८} अत एव प्रकरणादि को दृष्टि में रखकर ही ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर वैदिक शब्दों अथवा मन्त्रों का अर्थनिर्धारण करना चाहिए।

^{११२} तदेव ३.१६ उषसमस्य स्वसारमाह साहचर्यात्। रसहरणाद्वा।

^{११३} तदेव ४.२१ तत्र पिता दुहितुर्गर्भं दधाति पर्जन्यः पृथिव्याः। निरुक्तगत लाक्षणिक प्रयोगों के लिए द्रष्टव्य मानसिंह, निरुक्तगत लाक्षणिक प्रयोग Journal of the Ganganatha Jha Kendriya Sanskrit Vidyapeetha, इलाहबाद, खण्ड ३६, भाग १.४, जनवरी- दिसम्बर १९८०

^{११४} निरुक्त १०.१६

^{११५} तदेव १०.४२ अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यन्ते। यथा - अहो दर्शनीया, अहो दर्शनीयेति। तत्परुच्छेपास्य शीलम्।

^{११६} द्रष्टव्य सायण, ऋग्भाष्यभूमिका मन्त्रव्याख्यानरूपं ब्राह्मणम्।

^{११७} श्री पी.डी. गुणे ने अपने Brahmana-quotations in Nirukta शीर्षक लेख (Bhandarkar Commemoration Volume पृ. ४३-४५) में यास्कोद्धृत ब्राह्मण-वचनों में अधिकांश का मूल खोजा है।

^{११८} निरुक्त ७.२४ बहुभक्तिवादीनि हि ब्राह्मणानि भवन्ति। पृथिवी वैश्वानरः। संवत्सरो वैश्वानरः। ब्राह्मणो वैश्वानरः। इति।

आचार्य यास्क और वेदार्थ

निरुक्त के परिशिष्ट भाग में वेदार्थ विषयक कई उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण बातों का निर्देश किया गया है। तदनुसार मन्त्रार्थचिन्तन सम्बद्ध श्रुति तथा तर्क से दृढ होता है।^{११९} वास्तव में मन्त्रार्थनिर्णय में स्वयं श्रुति ही सर्वोत्कृष्ट प्रामाणिक साधन एवं प्रमाण है। श्रुति की व्याख्या स्वयं श्रुति ही के आश्रय से करना श्रेष्ठ है। वेदार्थ में तर्क भी अत्यावश्यक है। किसी भी वैदिक पद अथवा मन्त्र का अर्थ बिना उहापोह के नहीं करना चाहिए। निरुक्तकार के अनुसार तर्क साक्षात् ऋषि है; अनूचान व्यक्ति ही का तर्क वेदार्थ में उपयोगी होता है, सामान्य मनुष्य का नहीं।^{१२०} मन्त्रार्थनिश्चय करते हुए प्रकरण पर दृष्टि रखना अनिवार्य है। मन्त्रों की व्याख्या प्रकरणशः ही करनी चाहिए; प्रकरण से विच्छिन्न, पृथक् मन्त्रों की व्याख्या (अर्थविनिश्चय के अभाव में) नहीं करनी चाहिए।^{१२१} वेदमन्त्र तपस्वी तथा क्रान्तदर्शी ऋषियों के निर्मल अन्तस्तल में स्वतः अवतीर्ण दिव्या वाक् है;^{१२२} अतः उनमें अर्थ का प्रत्यक्ष किसी ऋषि अर्थात् ऋषितुल्य दृष्टि से युक्त तथा तपस्वी व्यक्ति ही को सम्भव है, अनूषि तथा अतपस्वी को नहीं।^{१२३} वेदमन्त्रों के पद गम्भीर अर्थ से गर्भित हैं^{१२४} और मन्त्र अतीव गूढ एवं रहस्यमय हैं;^{१२५} अतः वस्तुतः अधिकारी अनूचान विद्वान् ही को मन्त्रार्थप्रकाशन में प्रवृत्त होना चाहिए, मात्र पण्डितमन्य को नहीं।

प्रो. मानसिंह

६०/३, मुंशी प्रेमचन्द मार्ग, नवीन नेहरुनगर,
रुडकी २४७६६७ (जनपद - हरिद्वार) उत्तरांचल

^{११९} तदेव १३.१२ अयं मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहोऽभ्यूहोऽपि श्रुतितोऽपि तर्कतः।

^{१२०} तदेव १३.१२ तेभ्य एतं तर्कमृषिं प्रायच्छन् मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूहं तस्माद् यदेवं किञ्चानूचानोऽभ्यूहत्यार्षं तद् भवति।

^{१२१} तदेव १३.१२ न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः। प्रकरणश एव तु निर्वक्तव्याः।

^{१२२} तदेव २.११ ऋषिर्दर्शनात्। स्तोयान् ददर्शेत्यौपमन्यवः। तद्यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भवभ्यानर्षत्त ऋषयोऽभवंस्तदृषीणामृषित्वमिति विज्ञायते।

^{१२३} तदेव १३.१२ न ह्येषु प्रत्यक्षमस्त्यनृषेरतपसो वा। तुलनीय तदेव २.४ मेधाविने तपस्विने वा।

^{१२४} दुर्ग, निरुक्त १०.२६ पर वृत्तिः गम्भीरपदार्थो हि वेदः।

^{१२५} ऋग्वेदे ४.३.१६ निणया वचांसि।